श्रुतज्ञान एवं मतिज्ञान : एक विवेचन

डा० हेमलता बोलिया

सहायक शोध अधिकारी, साहित्य संस्थान, उदयपुर (राज०)

जिस प्रकार शब्द और अनुमान के सम्बन्ध में दार्शनिकों में मत वैभिन्न्य है उसी प्रकार जैन-दार्शनिकों में भी श्रुतज्ञान और मतिज्ञान को लेकर मतैक्य का अभाव है। श्रुतज्ञान एवं मतिज्ञान दोनों में ही कार्य-कारण का सम्बन्ध है। दोनों ही जीव में साथ-साथ रहते हैं, परोक्ष हैं। इनका परस्पर स्वरूप इतना अधिक सम्मिश्रित है कि दोनों के मध्य विभाजन रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त इसके मूल में सूत्रकार द्वारा किया हुआ लक्षण भी है। उमास्वाति ने अपने 'तत्त्वार्थसूत्र' में श्रुतज्ञान का लक्षण '**श्रुतं मतिपूर्वकम्**'[1] अर्थात् श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, किया है। इस आधार पर कुछ जैनाचार्यों की मान्यता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक भेद है, स्वतन्त्र ज्ञान नहीं। सिद्धसेन का तो यहाँ तक कहना है कि श्रुतज्ञान को मतिज्ञान से भिन्न मानना ही व्यर्थ है।

अतः श्रुतज्ञान मतिज्ञान से भिन्न एक स्वतन्त्र ज्ञान है अथवा नहीं, यह जैन दार्शनिकों के लिए विचार का विषय बन गया है। इस सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व दोनों के स्वरूप को पृथक्-पृथक् जान लेना आवश्यक है क्योंकि स्वरूपज्ञान के अभाव में दोनों के परस्पर एकत्व और भिन्नत्व का ज्ञान नहीं हो सकता है।

मतिज्ञान

सामान्यतः बुद्धि के माध्यम से जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। वैसे भी 'मति' शब्द 'मन' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है बुद्धि, तर्क आदि। इस आधार पर भी तर्कपरक ज्ञान ही मतिज्ञान सिद्ध होता है। परन्तु जैन-दार्शनिकों ने इसकी विशिष्ट परिभाषाएँ दी हैं।

मतिज्ञान क्या है ? इसका उत्तर देते हुए आचार्य गृद्धपिच्छ ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध एक-दूसरे के पर्याय हैं—केवल प्रकृत्या भिन्न दिखाई देते हैं। यह ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय व धारणा रूप से चार प्रकार का है।

किन्तु गृद्धपिच्छ के इस लक्षण से मतिज्ञान का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। अपितु उसके पर्यायों तथा प्रकारों का ज्ञान होता है।

पंचसंग्रहकार का मत है कि परोपदेश के बिना जो विष, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदि के विषय में बुद्धि प्रवृत्त होती है, उसे ज्ञानीजन मतिज्ञान कहते हैं।

इन परिभाषाओं से मतिज्ञान का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता है। इसलिए एक दार्शनिक ने इसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि परार्थ तथा इन्द्रियों के सन्निकर्ष

---

१ तत्त्वार्थसूत्र १।२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की सचेतावस्था में होने वाला पदार्थज्ञान मतिज्ञान है अथवा श्रवणेन्द्रियातिरिक्त ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान को भी मतिज्ञान कहा जा सकता है।

कतिपय दार्शनिकों की इस भ्रान्त धारणा कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक भेद है, के निराकरण हेतु अधिकांश जैनदार्शनिकों ने मतिज्ञान के स्वरूप का विवेचन श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए किया है।

श्रुतज्ञान

सामान्यतः श्रुत का अर्थ '**श्रवणं-श्रुतम्**' से सुनना है। यह संस्कृत की 'श्रु' रणु से निष्पन्न है। पूज्यपाद ने श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर निरुप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनना या सुनना मात्र है वह श्रुत है।[1]

किन्तु 'श्रुत' शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ सुना हुआ होने पर भी जैन-दर्शन में यह 'श्रुत' शब्द ज्ञान विशेष में रूढ़ है।[2] तथा '**मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्**'[3] इस सूत्र से भी ज्ञान शब्द की अनुवृत्ति चली आने के कारण भावरूप श्रवण द्वारा निर्वचन किया गया श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञान है। केवल मात्र कानों से सुना गया शब्द ही श्रुत नहीं है।[4] श्रुत का अर्थ ज्ञान विशेष करने पर जैन-दर्शन में जो शब्दमय द्वादशांग श्रुत प्रसिद्ध है उसमें विरोध उपस्थित होता है क्योंकि श्रुत शब्द से ज्ञान को ग्रहण करने पर शब्द छूट जाते हैं और शब्द को ग्रहण करने पर ज्ञान छूट जाता है तथा दोनों का एक साथ ग्रहण होना भी असम्भव है। इस पर जैनदार्शनिकों का कथन है कि उपचार से शब्दात्मक श्रुत भी श्रुतशब्द द्वारा ग्रहण करने योग्य है। इसीलिए सूत्रकार ने शब्द के भेद-प्रभेदों को बताया है। यदि इनको 'श्रुतशब्द' ज्ञान ही इष्ट होता तो ये शब्द के होने वाले भेद-प्रभेदों को नहीं बताते।[5] अतः जैनदार्शनिकों को मुख्यतः तो श्रुत से ज्ञान अर्थ ही इष्ट है, किन्तु उपचार से श्रुत का शब्दात्मक होना भी उनको ग्राह्य है।

उमास्वाति के पूर्व शब्द को सुनकर जो ज्ञान होता था उसे श्रुतज्ञान कहा जाता था और उसमें शब्द के मुख्य कारण होने से उसे भी उपचार में श्रुतज्ञान कहा जाता था। परन्तु उमास्वाति को श्रुतज्ञान का इतना ही लक्षण इष्ट नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने अपने तत्त्वार्थसूत्र में श्रुतज्ञान का एक-दूसरा ही लक्षण किया है, जिसके अनुसार श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। उमास्वाति के पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिकों में नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक को छोड़कर प्रायः सभी यह मानते हैं कि

---

१ (क) तत्त्वार्थवार्तिकम् १।६।२, पृ० ४४

(ख) तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुयते अनेन—शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्।
—**सर्वार्थसिद्धि** १।६, पृ० ६६

(ग) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार ३।६।४, पृ० ३

२ श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञान विशेषे वर्तते।
—**सर्वार्थसिद्धि** १।२०, पृ० ८३

३ तत्त्वार्थसूत्र १।२०

४ ·········ज्ञानमित्यनुवर्तनात्। श्रवणं हि श्रुतज्ञानं न पुनः शब्दमात्रकम्।
—**तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार** ३।२०।२०, पृ० ५६६

५ वही, ३।२०।३, पृ० ५६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। किन्तु उमास्वाति के इस लक्षण से श्रुतज्ञान का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता है। इसीलिए जैनदार्शनिकों ने पृथक्-पृथक् इसके लक्षण किये हैं।

जिनभद्रगणिं के अनुसार इन्द्रिय और मन की सहायता से जो शब्दानुसारी ज्ञान होता है और अपने में प्रतिभा समान अर्थ का प्रतिपादन करने में जो समर्थ होता है उसे तो भावश्रुत कहते हैं तथा जो ज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होता है परन्तु शब्दानुसारी नहीं होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं।[1]

जिनभद्रगणि के इस लक्षण से यद्यपि अकलंक सहमत हैं किन्तु इन्होंने शब्द पर जिनभद्रगणि से अधिक बल दिया है। अकलंक का कहना है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान होते हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं।[2] अकलंक ने श्रुतज्ञान का यह लक्षण करके अन्य दर्शनों में माने गये उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य और प्रतिभा प्रमाणों का अन्तर्भाव श्रुतज्ञान में किया है और इनका यह भी कहना है कि शब्द प्रमाण तो श्रुतज्ञान ही है। इनके इस मत का पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिकों ने समर्थन भी किया परन्तु उनको इनका शब्द पर इतना अधिक बल देना उचित प्रतीत नहीं हुआ। यद्यपि वे भी इस बात को तो स्वीकार करते हैं कि श्रुतज्ञान में शब्द की प्रमुखता होती है।

अमृतचन्द्र सूरि ने श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए इतना ही कहा कि मतिज्ञान के बाद स्पष्ट अर्थ की तर्कणा को लिए हुए जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है।[3]

किन्तु नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक ने तो श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे एकदम भिन्न किया है। यह हम पूर्व में ही संकेत कर चुके हैं कि श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इसको ये स्वीकार नहीं करते हैं। इनके इसको स्वीकार नहीं करने का कारण शायद यह रहा होगा कि श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक रूप से जो दो भेद हैं, उनमें अनक्षरात्मक श्रुत दिगम्बर-परम्परा के अनुसार शब्दात्मक नहीं है और ऊपर श्रुतज्ञान की यह परिभाषा दी गयी है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं इस परिभाषा को मानने पर मतिज्ञान और अनक्षरात्मक श्रुत में कोई भेद नहीं रह जाता है। इसीलिए इन्होंने श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे भिन्न किया है। इनके अनुसार मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।[4]

किन्तु श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इस कथन में कोई असंगति नहीं है क्योंकि यह इस दृष्टि

---

१ इंदियमणोणिमित्तं जं विण्णाणं सुताणुसारेणं।
णिअयत्थु त्ति समत्थं तं भावसुतं मति सेसं॥
—विशेषावश्यकभाष्य, भाग १, गाथा ९९

२ ज्ञानमाद्यं मतिः संज्ञा चिन्ता चाभिनिबोधिकम्।
प्राक् नामयोजनाच्छेषं श्रुतं शब्दानुयोजनात्॥
—लघीयस्त्रय, कारिका १०

३ द्रष्टव्य—तत्त्वार्थसार, कारिका २४

४ अत्थादो अत्थंतरमुवलंभतं भणंति सुदणाणं।
—गोम्मटसार (जीवकाण्ड), गाथा ३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कहा गया है कि श्रुतज्ञान होने के लिए शब्द श्रवण आवश्यक है और शब्द श्रवण मति के अन्तर्गत है तथा यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है। जब शब्द सुनाई देता है तब उसके अर्थ का स्मरण होता है। शब्दश्रवणरूप जो व्यापार है वह मतिज्ञान है, उसके पश्चात् उत्पन्न होने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रुतज्ञान में मतिज्ञान मुख्य कारण है। क्योंकि मतिज्ञान के होने पर भी जब तक श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम न हो तब तक श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है। मतिज्ञान तो इसका बाह्य कारण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम होने पर मन और इन्द्रिय की सहायता से अपने में प्रतिभासमान अर्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ जो स्पष्ट ज्ञान है, वह श्रुतज्ञान है।

यद्यपि दोनों के स्वरूप विवेचन से ही यह सिद्ध हो जाता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का भेद नहीं है। फिर भी जैनदार्शनिकों ने पृथक् से इस विषय में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है।

जिनभद्रगणि[1] ने अपने 'विशेषावश्यकभाष्य' में दोनों के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मतिज्ञान का लक्षण भिन्न है और श्रुत का लक्षण भिन्न है। मति कारण है, श्रुत उसका कार्य है। मति के भेद भिन्न हैं और श्रुत के भेद भिन्न हैं। श्रुतज्ञान की इन्द्रिय केवल श्रोत्रेन्द्रिय है और मतिज्ञान की इन्द्रियाँ सभी हैं; मतिज्ञान मूक है इसके विपरीत श्रुतज्ञान मुखर है इत्यादि।

वैसे भी मतिज्ञान प्रायः वर्तमान विषय का ग्राहक होता है जबकि श्रुतज्ञान त्रिकाल विषयक अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का ग्राहक होता है। श्रुतज्ञान का मतिज्ञान से एक भेद यह है कि मतिज्ञान तो सिर्फ ज्ञान रूप ही है जबकि श्रुतज्ञान ज्ञान रूप भी है और शब्दरूप भी है, इसे ज्ञाता स्वयं भी जानता है और दूसरों को भी ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रुतज्ञान एक स्वतन्त्र ज्ञान है। जिन दार्शनिकों ने इसे मति का ही एक भेद माना है उन्होंने इसके स्वरूप को ठीक से नहीं समझा अन्यथा वे ऐसा नहीं कहते। ✡

पता—
डा० हेमलता बोलिया
C/o श्रीमान् बलवन्तसिंहजी बोलिया
३५, गंगा गली (गणेश घाटी)
पो० उदयपुर

१ विशेषावश्यकभाष्य भाग १, गाथा ९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org